International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 1; Issue 10; October 2016; Page No. 44-45

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में सन्त साहित्य का वैशिष्ट्य

डा0 सुदर्शन राठी

ऐसाशिष्ट प्रोफेसर हिन्दी, महाराजा अग्रसेन महिला महाविद्यालय, झज्जर, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य और विश्व साहित्य में हिन्दी की जो अस्मिता स्थापित हुई है उसका सारा श्रेय मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को जाता है। हिन्दी साहित्य का मध्यकाल कई दृष्टियों से बेजोड़ ओर अप्रतिम है। ''भक्ति की व्यापक प्रतिष्ठा और उसकी सामाजिक संस्कारों के प्रति गहरी प्रतिबद्धता, व्यक्ति परिष्कार और सामाजिक संस्कार की अवधारणा, नाना रसों और भावों की सूक्ष्म पड़ताल, काव्य–शास्त्रीय चिन्तन की प्रस्तुति, युगीन समस्याओं और युग–बोधों से जीवन्त संलाप प्रकृति–संस्कृति और राजनीति के विविध आशयों की व्याख्या, प्रकृति–प्रणय और प्रेम की पीर का सहज स्वाभाविक निरूपण तथा काव्य भाषा और कला कौशल की पच्चीकारी मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के गौरवपूर्ण अध्याय हैं''[1] जिनकी सार्थकता और महत्ता को आज भी उतना ही उच्च स्थान प्राप्त है जितना उस समय था।

मध्यकालीन हिन्दी काव्य का भारत वर्ष की हिन्दी कविता तथा भारत वर्ष के जनमानस में विशेष महत्त्व है। हिन्दी का भक्ति काल अपनी आध्यात्मिक उर्ध्वता और सामाजिक सम्पृक्ति तथा हिन्दी का रीतिकाल अपनी श्रृंगार विशदता और कलात्मक श्रेष्ठता के कारण अति प्रशंसित और अति चर्चित रहा है। अपनी आध्यात्मिक तथा सामाजिक सार्थकता के ही कारण भक्तिकाल हिन्दी का स्वर्णकाल भी कहलाया। वास्तव में ''मध्यकालीन काव्य अपनी भाव–विराटता, भाव समृद्धता तथा कला–विविधता के कारण ही हर वर्ग आचार्यों, आलोचकों, अध्येताओं, पाठकों के अध्ययन और अनुसंधान का कारण बना। निस्संदेह, भारतीय साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन काव्य एक नहीं, अनेक दृष्टियों और उपलब्धियों के कारण अप्रतिम–अनुपम है। मध्यकाल के दोनों ही काल – भक्ति और रीति – चेतना के अलग–अलग स्तरों से, भिन्न–भिन्न कोणों से तथा भिन्न–भिन्न दिशाओं से भावन करने तथा देखने का प्रशस्त राजमार्ग देते हुए चलते हैं।''[2]

हिन्दी साहित्य के लगभग 600 वर्षों के साहित्येतिहास को हम मध्यकाल के नाम से जानते हैं

1. पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल : संवत् 1375 से 1700 तक
2. उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल : संवत् 1700 से 1900 तक

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल लगभग तीन सौ वर्षों का सुदीर्ध काल है। भारतीय राजनीति इतिहास के अनुसार इस काल को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – सवंत् 1375 से 1583 तक और 1583 से 1700 तक। प्रथम भाग में दिल्ली पर तुगलक और लोधी वंश के पठान शासकों ने राज्य किया और द्वितीय भाग में मुगल वंश के बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहॉगीर और शाहजहॉ ने। शाहजहॉ के शासनकाल में ही रीतिकाल का प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि रीतिकाव्य के प्रवर्तक चिन्तामणि का रचना–काल संवत् 1700 माना गया है। इस काल के अधिकांश भाग का राजनीतिक वातावरण समूची प्रजा के लिए विशेषतः हिन्दुओं के लिए अशान्त है, पर इधर इन भक्तों की वाणी धर्म–प्रधान एवं शान्ति–प्रधान है। मध्यकालीन काव्य अपनी भाव–विराटता, भाव–गंभीरता, भाव–समृद्धता तथा कला विविधता के कारण ही हर वर्ग के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रहा। निस्संदेह, भारतीय साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन काव्य एक नहीं अनेक दृष्टियों और उपलब्धियों के कारण अनुपम एवं अप्रतिम है। सम्पूर्ण मध्यकाल के साहित्यकार भिन्न–भिन्न स्तरों से भिन्न–भिन्न कोणों से देखने का प्रशस्त राजमार्ग देते चलते हैं। इस प्रशस्त राजमार्ग को रचने में कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, मीरा, रसखान, रहीम, बिहारी, धनानंद आदि के विशिष्ट योगदान को स्मृति पटल से ओझल नहीं किया जा सकता। वैसे तो मध्यकालीन हिन्दी काव्य को समृद्ध करने वाले असंख्य भक्त संत कवि है लेकिन उक्त कवियों का महत्व अग्र पांक्तेय है।

भक्तिकाल की तीन शताब्दियों में उत्तर–भारत में हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत तथा फारसी भाषा का साहित्य भी निर्मित हुआ। पर इन दोनों प्रकार के साहित्य का इस काल के हिन्दी–साहित्य पर किसी भी रूप में प्रभाव नहीं पड़ा। भक्तिकाल में वीर–रस प्रधान–काव्य की रचना नहीं हुई। हाँ उसका प्रासंगिक रूप में अन्य रसों के साथ वर्णन अवश्य हुआ है। डा. शिवकुमार शर्मा का मत है कि ''भक्ति–सहित्य में भारतीय संस्कृति और आचार–विचार की पूर्णतः रक्षा हुई है। भक्ति काव्य जहां उच्चतम धर्म की व्याख्या करता है वही उसमें उच्च कोटि के काव्य के दर्शन भी होते हैं। इसकी आत्मा भक्ति है, इसका जीवन स्रोत रस है उसका शरीर मानवीय है। रस का दृष्टि से भी यह साहित्य श्रेष्ठ है। यह साहित्य एक साथ हृदय, मन और आत्मा की भूख को तृप्त करता है। यही साहित्य लोक तथा परलोक को एक साथ स्पर्श करता है। अतः इसे पराजित मनोवृति का परिणाम कहना नितान्त भूल होगी।''[3] भक्तिकालीन कविता के उद्भव के पीछे भी उस युग के परिवेशगत कारण ही रहे हैं। वह युग चेतना अपने युग संघर्षों से उदभावित हुई है। भक्तिकाल के राजनीतिक परिवेश ने भक्तिकाल के जन–मानस को बड़ी गम्भीरता और निकटता से प्रभावित कर रखा था। समाज के दोनों ही वर्ग–हिन्दू और मुसलमान–अनेकानेक रूढ़ियों जड़ताओं – संकीर्णताओं से ग्रस्त थे। समाज में शैव शाक्त, वैष्ण, जैन धर्म आदि व्याप्त थे। वैसे ये धर्म आपस में शत्रु–भाव से ग्रसित थे अब इन्हें एक नए धर्म–इस्लाम धर्म से सामना करना था। इस इस्लाम धर्म के पास तलवार की ताकत भी थी। सत्ता इस्लाम धर्म के पास थी। इन्हीं परिस्थितियों की जकड़बंदी में भक्ति का सोता फूटा, जो बाद में सामाजिक–सांस्कृतिक जागरण का महासागर कहलाया।

भक्तिकाल में भक्ति के बहुमुखी आयाम और उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति के प्रचुरता दिखाई देती है। हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि में इस काल में भक्तों, संतों और रसिकों ने अपनी रचनाओं से भरपूर योग दिया है। भक्तिकालीन साहित्य अपने गुणात्मक और परिमाणात्मक रूप में युगों तक हिन्दी को गौरव प्रदान करता रहेगा।

सन्त 'सत्' धातु से बना है और व्यापक अर्थ में हम किसी भी ईश्वरोन्मुखी सज्जन पुरुष को सन्त कह सकते हैं। सन्त शब्द का

प्रारम्भिक अर्थ महात्मा, सज्जन, त्यागी सिद्ध या कभी–कभी भक्त का भी द्योतन करता है। परन्तु मध्यकालीन हिन्दी काव्य की निर्गुण काव्य धारा के लिए सन्त काव्य और निर्गुण धारा के कवि के लिए सन्त–कवि शब्द प्रचलित हो गए। भक्ति का आलम्बन सगुण ईश्वर अधिक उपयुक्त है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने 'सन्त शब्द की व्युत्पत्ति शान्त शब्द से मानते हुए इसका अर्थ निवृत्ति मार्गी या वैरागी किया है।''[4] डा. विनय मोहन शर्मा ने व्यावाहरिक दृष्टि से सन्त का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया है, ''जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन भाव को साध्य मानकर लोक मंगल की कामना करता है, वह सन्त है।''[5]

संत और संत काव्य शब्दों का प्रयोग बहुत प्राचीन है। साक्षात्कार किए हुए सत्य खंडों की अभिव्यक्ति को कबीर ने 'साखी' कहा है, ''तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखिन की देखी।''[6]

कबीर का यह कथन द्रष्टव्य है –

''निरबेरी निहिकामना साईं सेती नेह।
विषया सूँ न्यारा रहे, संतन का अंग एह।।''[7]

सन्तों ने वैष्णव भक्ति के कई तत्वों को ग्रहण किया है। सर्वप्रथम तो उन्होंने ईश्वर के पर्यायवाची के रूप में राम, गोविन्द हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया है। ''निगुण कहै सगुण बिन, सो गुरु तुलसीदास'' कहने वाले गोस्वामी तुलसीदास ने श्रेष्ठ संत का वर्णन करते समय संत की प्रधान विशेषता सगुणोपासना बतलाई है। गोस्वामी तुलसीदास ने सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं मानते।

अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेद कहा है।

कबीर दादू नानक, रज्जव, रैदास, धनी धरमदास, मलूकदास, सुन्दर दास सन्त कवियों की प्रथम श्रेणी में आते हैं। सूफी काव्य धारा भी इसी समय बही। सूफी मत का मेरुदण्ड प्रेम पर आधारित है। प्रेम ही वह माध्यम है जो लौकिक के माध्यम से अलौकिक का साक्षात्कार कराता है। सूफी मत ने ईश्वर और जीव में कोई भेद नहीं है। जायसी–कुतुबन, मंझन, जानकवि, शेखनबी, उसमान आदि ने प्रबन्ध काव्य शैली और फारसी मसनवी शैली में अपनी रचनाओं में परमात्मा के रूप में सौन्दर्य से परिचित करवाया। कृष्ण भक्ति धारा में वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधा वल्लभ सम्प्रदाय, हरिदास सम्प्रदाय से जुड़े सूरदास–नन्द दास, चैतन्य महाप्रभु और परमानन्द दास के साथ–साथ मीराबाई जैसी कृष्ण मस्त, भाव–प्रवाह से जुड़ी सन्त, सगुण–निर्गुण, कृष्ण भक्ति की छवि परिलक्षित होती है। हिन्दी साहित्य में रामकाव्य की मणिमाला के सुमेरू है। उन्होंने रामकथा को ऊँचाई तक पहुँचाया। उनके द्वारा रचा 'रामचरित मानस' तो भारतीय संस्कारो का महाकाव्य है, वह भारतीय मूल्यों का संविधान है। इनके अतिरिक्त नाभादास, केशवदास आदि प्रमुख उत्तर मध्यकालीन अथवा रीतिकालीन काव्य सामन्तों की छाया में पला और बढ़ा। ओरंगजेब की कट्टर नीति के कारण कविता छोटे–छोटे रजवाड़ों में प्रश्रय पाने लगी। उस काल में स्वार्थ ग्रस्त राजनीति तथा सामन्ती वातावरण प्रेरित सामाजिक व्यवस्था तथा विलासपूर्ण वैभव से युक्त प्रदर्शन प्रधान एवं अलंकरण की प्रवृति से पूर्ण तत्कालीन काव्य था। रीति काव्य की दो प्रमुख प्रवृत्तियों आचार्यत्व और श्रृंगारिक्ता के साथ–साथ अन्य प्रवृतियाँ भी विकसित हुई है। लगता है भक्ति नीति की बात से रीतिकालीन साहित्यकारों ने वासना से उक्ता कर की है। भक्ति भाव प्रकट करने के लिए नहीं, अपितु मात्र नैतिकता का प्रचार करने के लिए। सवैया–कवित और दोहा छन्द में मुक्तक काव्य राज दरबारों की शोभा बढ़ाने के रस छींटे भी देता है। इस काल के काव्य का केन्द्र बिन्दु नारी है लेकिन नारी जीवन के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण संकुचित और मांसल रहा है।

संक्षेय में कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण सन्त काल मानव उद्वार मानव मूल्यों एवं आत्मा परमात्मा का द्योतक काल है। जो अपने आप में सर्वथा सम्पूर्ण और कालजयी साहित्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. मध्यकालीन काव्य कुन्ज, डॉ. रामसजन पाण्डेय, पृ. 16
2. वही, पृ. 3
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. चातक एवं प्रो. राजकुमार शर्मा, पृ. 84
4. वही, पृ. 94
5. वही, पृ. 94
6. वही, पृ. 95